अनेकान्तवाद की मर्यादा

जैनधर्म का मूल—

कोई भी विशिष्ट दर्शन हो या धर्म पन्थ, उसकी आधारभूत—उसके मूल प्रवर्तक पुरुष की—एक खास दृष्टि होती है; जैसे कि—शंकराचार्य की अपने मतनिरूपण में 'अद्वैत दृष्टि' और भगवान् बुद्ध की अपने धर्म-पन्थ प्रवर्तन में 'मध्यम प्रतिपदा दृष्टि' खास दृष्टि है। जैन दर्शन भारतीय दर्शनों में एक विशिष्ट दर्शन है और साथ ही एक विशिष्ट धर्म-पन्थ भी है, इसलिए उसके प्रवर्तक और प्रचारक मुख्य पुरुषों की एक खास दृष्टि उनके मूल में होनी ही चाहिए और वह है भी। यही दृष्टि अनेकान्तवाद है। तात्त्विक जैन-विचारणा अथवा आचार-व्यवहार जो कुछ भी हो वह सब अनेकान्त-दृष्टि के आधार पर किया जाता है। अथवा यों कहिए कि अनेक प्रकार के विचारों तथा आचारों में से जैन विचार और जैना चार क्या हैं? कैसे हो सकते हैं? इन्हें निश्चित करने व कसने की एक मात्र कसौटी भी अनेकान्त दृष्टि ही है।

अनेकान्त का विकास और उसका श्रेय—

जैन-दर्शन का आधुनिक मूल-रूप भगवान् महावीर की तपस्या का फल है। इसलिए सामान्य रूप से यही समझा जा सकता है कि जैन-दर्शन की आधारभूत अनेकान्त-दृष्टि भी भगवान् महावीर के द्वारा ही पहले पहल स्थिर की गई या उद्भावित की गई होगी। परन्तु विचार के विकास क्रम और पुरातन इतिहास के चिंतन करने से साफ मालूम पड़ जाता है कि अनेकान्त दृष्टि का मूल भगवान् महावीर से भी पुराना है। यह ठीक है कि जैन-साहित्य में अनेकान्त-दृष्टि का जो स्वरूप आजकल व्यवस्थित रूप से और विकसित रूप से मिलता है वह स्वरूप भगवान् महावीर के पूर्ववर्ती किसी जैन या जैनतर साहित्य में नहीं पाया जाता, तो भी भगवान् महावीर के पूर्ववर्ती वैदिक-साहित्य में और उसके समकालीन बौद्ध-साहित्य में अनेकान्त-दृष्टि-गर्भित बिखरे हुए विचार थोड़े बहुत मिल ही जाते हैं। इसके सिवाय भगवान् महावीर के पूर्ववर्ती भगवान् पार्श्वनाथ हुए हैं जिनका विचार आज यद्यपि उन्हीं के शब्दों में—असल रूप में नहीं पाया जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर भी उन्होंने अनेकान्त-दृष्टि का स्वरूप स्थिर करने में अथवा उसके विकास में कुछ न कुछ भाग जरूर लिया है, ऐसा पाया जाता है। यह सब होते हुए भी उपलब्ध-साहित्य का इतिहास स्पष्ट रूप से यही कहता है कि २५०० वर्ष के भारतीय साहित्य में जो अनेकान्त-दृष्टि का थोड़ा बहुत असर है या खास तौर से जैन-वाङ्मय में अनेकान्त-दृष्टि का उत्थान होकर क्रमशः विकास होता गया है और जिसे दूसरे समकालीन दार्शनिक विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थों में किसी न किसी रूप में अपनाया है उसका मुख्य श्रेय तो भगवान् महावीर को ही है; क्योंकि जब हम आज देखते हैं तो उपलब्ध जैन-प्राचीन ग्रन्थों में अनेकान्त-दृष्टि की विचारधारा जिस स्पष्ट रूप में पाते हैं उस स्पष्ट रूप में उसे और किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं पाते।

नालंदा के प्रसिद्ध बौद्ध विद्यापीठ के आचार्य शान्तरक्षित अपने 'तत्त्वसंग्रह' ग्रन्थ में अनेकान्तवाद का परीक्षण करते हुए कहते हैं कि विप्र—मीमांसक, निर्ग्रंथ जैन और कापिल—सांख्य इन तीनों का अनेकान्तवाद समान रूप से खण्डित हो जाता है। इस कथन से यह पाया जाता है कि सातवीं-आठवीं सदी के बौद्ध आदि विद्वान् अनेकान्तवाद को केवल जैन-दर्शन का ही वाद न समझते थे किन्तु यह मानते थे कि मीमांसक, जैन और सांख्य तीनों दर्शनों में अनेकान्तवाद का आश्रयण है और ऐसा मानकर ही वे अनेकान्तवाद का खण्डन करते थे। हम जब मीमांसक दर्शन के श्लोकवार्तिक आदि और सांख्य योग दर्शन के परिणामवाद स्थापक प्राचीन-ग्रन्थ देखते हैं तो निःसन्देह यह जान पड़ता है कि उन ग्रन्थों में भी जैन-ग्रन्थों की तरह अनेकान्त-दृष्टि मूलक विचारणा है। अतएव शान्तरक्षित जैसे विविध दर्शनाभ्यासी विद्वान् के इस कथन में हमें तनिक भी सन्देह नहीं रहता कि मीमांसक, जैन और कापिल तीनों दर्शनों में अनेकान्तवाद का अवलम्बन है। परन्तु शान्तरक्षित के कथन को मानकर और मीमांसक तथा सांख्य योग दर्शन के ग्रन्थों को देखकर भी एक बात तो कहनी ही पड़ती है कि यद्यपि अनेकान्त-दृष्टि मीमांसक और सांख्य योग-दर्शन में भी है तथापि वह जैन-दर्शन के ग्रन्थों की तरह अति स्पष्ट रूप और अति व्यापक रूप में उन दर्शनों के ग्रन्थों में नहीं पाई जाती। जैन-विचारकों ने जितना जोर और जितना पुरुषार्थ अनेकान्त दृष्टि के निरूपण में लगाया है, उसका शतांश भी किसी दर्शन के विद्वानों ने नहीं लगाया। यही कारण है कि आज जब कोई 'अनेकान्तवाद' या 'स्याद्वाद' शब्द का उच्चारण करता है तब सुननेवाला विद्वान् उससे सहसा जैन-दर्शन का ही भाव ग्रहण करता है। आजकल के बड़े-बड़े विद्वान् तक भी यही समझते हैं कि 'स्याद्वाद' यह तो जैनों का ही एक वाद है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस समझ का कारण है कि जैन विद्वानों ने स्याद्वाद के निरूपण और समर्थन में बहुत बड़े-बड़े ग्रन्थ लिख डाले हैं, अनेक युक्तियों का आविर्भाव किया है और अनेकान्तवाद के शस्त्र के बल से ही उन्होंने दूसरे दार्शनिक विद्वानों के साथ कुश्ती की है।

इस चर्चा से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं—एक तो यह कि भगवान् महावीर ने अपने उपदेशों में अनेकान्तवाद का जैसा स्पष्ट आश्रय लिया है वैसा उनके समकालीन और पूर्ववर्ती दर्शन प्रवर्तकों में से किसी ने भी नहीं लिया है। दूसरी बात यह कि भगवान् महावीर के अनुयायी जैन आचार्यों ने अनेकान्त दृष्टि के निरूपण और समर्थन करने में जितनी शक्ति लगाई है उतनी और किसी भी दर्शन के अनुगामी आचार्यों ने नहीं लगाई।

अनेकान्त दृष्टि के मूल तत्त्व—

जब सारे जैन विचार और आचार की नींव अनेकान्त दृष्टि ही है तब पहले यह देखना चाहिए कि अनेकान्त दृष्टि किन तत्त्वों के आधार पर खड़ी की गई है? विचार करने और अनेकान्त दृष्टि के साहित्य का अवलोकन करने से मालूम होता है कि अनेकान्त दृष्टि सत्य पर खड़ी है। यद्यपि सभी महान् पुरुष सत्य को पसन्द करते हैं और सत्य की ही खोज तथा सत्य के ही निरूपण में अपना जीवन व्यतीत करते हैं, तथापि सत्य निरूपण की पद्धति और सत्य की खोज सब की एक सी नहीं होती। बुद्धदेव जिस शैली से सत्य का निरूपण करते हैं या शङ्कराचार्य उपनिषदों के आधार पर जिस ढंग से सत्य का प्रकाशन करते हैं उससे भ० महावीर की सत्य प्रकाशन की शैली जुदा है। भ० महावीर की सत्य प्रकाशन शैली का ही दूसरा नाम 'अनेकान्तवाद' है। उसके मूल में दो तत्त्व हैं—पूर्णता और यथार्थता। जो पूर्ण है और पूर्ण होकर भी यथार्थ रूप से प्रतीत होता है वही सत्य कहलाता है।

अनेकान्त की खोज का उद्देश्य और उसके प्रकाशन की शर्तें—

वस्तु का पूर्ण रूप में त्रिकालाबाधित—यथार्थ दर्शन होना कठिन है, किसी को वह हो भी जाय तथापि उसका उसी रूप में शब्दों के द्वारा ठीक-ठीक कथन करना उस सत्यद्रष्टा और सत्यवादी के लिए भी बड़ा कठिन है। कोई उस कठिन काम को किसी अंश में करनेवाले निकल भी आएँ तो भी देश, काल, परिस्थिति, भाषा और शैली आदि के अनिवार्य भेद के कारण उन सब के कथन में कुछ न कुछ विरोध या भेद का दिखाई देना अनिवार्य है। यह तो हुई उन पूर्णदर्शी और सत्यवादी इने-गिने मनुष्यों की बात, जिन्हें हम सिर्फ कल्पना या अनुमान से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझ या मान सकते हैं। हमारा अनुभव तो साधारण मनुष्यों तक परिमित है और वह कहता है कि साधारण मनुष्यों में भी बहुत से यथार्थवादी होकर भी अपूर्णदर्शी होते हैं। ऐसी स्थिति में यथार्थवादिता होने पर भी अपूर्ण दर्शन के कारण और उसे प्रकाशित करने की अपूर्ण सामग्री के कारण सत्यप्रिय मनुष्यों की भी समझ में कभी-कभी भेद आ जाता है और संस्कार भेद उनमें और भी पारस्परिक टक्कर पैदा कर देता है। इस तरह पूर्णदर्शी और अपूर्णदर्शी सभी सत्यवादियों के द्वारा अन्त में भेद और विरोध की सामग्री आप ही आप प्रस्तुत हो जाती है या दूसरे लोग उनसे ऐसी सामग्री पैदा कर लेते हैं।

ऐसी वस्तु स्थिति देखकर भ० महावीर ने सोचा कि ऐसा कौन सा रास्ता निकाला जाए जिससे वस्तु का पूर्ण या अपूर्ण सत्य दर्शन करनेवाले के साथ अन्याय न हो। अपूर्ण और अपने से विरोधी होकर भी यदि दूसरे का दर्शन सत्य है, इसी तरह अपूर्ण और दूसरे से विरोधी होकर भी यदि अपना दर्शन सत्य है तो दोनों को ही न्याय मिले इसका भी क्या उपाय है? इसी चिंतनप्रधान तपस्या ने भगवान् को अनेकान्त दृष्टि सुझाई, उनका सत्य संशोधन का संकल्प सिद्ध हुआ। उन्होंने उस मिली हुई अनेकान्तदृष्टि की चाबी से वैयक्तिक और सामष्टिक जीवन की व्यावहारिक और पारमार्थिक समस्याओं के ताले खोल दिये और समाधान प्राप्त किया। तब उन्होंने जीवनोपयोगी विचार और आचार का निर्माण करते समय उस अनेकान्त दृष्टि को निम्नलिखित मुख्य शर्तों पर प्रकाशित किया और उसके अनुसरण का अपने जीवन द्वारा उन्हीं शर्तों पर उपदेश दिया। वे शर्तें इस प्रकार हैं—

१—राग और द्वेषजन्य संस्कारों के वशीभूत न होना अर्थात् तेजस्वी मध्यस्थ भाव रखना।

२—जब तक मध्यस्थ भाव का पूर्ण विकास न हो तब तक उस लक्ष्य की ओर ध्यान रखकर केवल सत्य की जिज्ञासा रखना।

३—कैसे भी विरोधी भासमान पक्ष से न घबराना और अपने पक्ष की तरह उस पक्ष पर भी आदरपूर्वक विचार करना तथा अपने पक्ष पर भी विरोधी पक्ष की तरह तीव्र समालोचक दृष्टि रखना।

४—अपने तथा दूसरों के अनुभवों में से जो-जो अंश ठीक जँचें—चाहे वे विरोधी ही प्रतीत क्यों न हों—उन सबका विवेक—प्रज्ञा से समन्वय करने की उदारता का अभ्यास करना और अनुभव बढ़ने पर पूर्व के समन्वय में जहाँ गलती मालूम हो वहाँ मिथ्याभिमान छोड़ कर सुधार करना और इसी क्रम से आगे बढ़ना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्त साहित्य का विकास—

भगवान् महावीर ने अनेकान्त दृष्टि को पहले अपने जीवन में उतारा था और उसके बाद ही दूसरों को इसका उपदेश दिया था। इसलिए अनेकान्त-दृष्टि की स्थापना और प्रचार के निमित्त उनके पास काफी अनुभवबल और तपोबल था। अतएव उनके मूल उपदेश में से जो कुछ प्राचीन अवशेष आजकल पाए जाते हैं उन आगमग्रन्थों में हम अनेकान्त-दृष्टि को स्पष्ट रूप से पाते हैं सही, पर उसमें तर्कवाद या खण्डन-मण्डन का वह जटिल जाल नहीं पाते जो कि पिछले साहित्य में देखने में आता है। हमें उन आगम ग्रन्थों में अनेकान्त-दृष्टि का सरल स्वरूप और संक्षिप्त विभाग ही नजर आता है। परन्तु भगवान् के बाद जब उनकी दृष्टि पर संप्रदाय कायम हुआ और उसका अनुगामी समाज स्थिर हुआ तथा बढ़ने लगा, तब चारों ओर से अनेकान्त-दृष्टि पर हमले होने लगे। महावीर के अनुगामी आचार्यों में त्याग और प्रज्ञा होने पर भी, महावीर जैसा स्पष्ट जीवन का अनुभव और तप न था। इसलिए उन्होंने उन हमलों से बचने के लिए नैयायिक गौतम और वात्स्यायन के कथन की तरह वादकथा के उपरान्त जल्प और कहीं-कहीं वितण्डा का भी आश्रय लिया है। अनेकान्त-दृष्टि का जो तत्त्व उनको विरासत में मिला था उसके संरक्षण के लिए उन्होंने जैसे बन पड़ा वैसे कभी वाद किया, कभी जल्प और कभी वितण्डा। इसके साथ ही साथ उन्होंने अनेकान्त दृष्टि को निर्दोष स्थापित करके उसका विद्वानों में प्रचार भी करना चाहा और इस चाहजनित प्रयत्न से उन्होंने अनेकान्त-दृष्टि के अनेक मर्मों को प्रकट किया और उनकी उपयोगिता स्थापित की। इस खण्डन-मण्डन, स्थापन और प्रचार के करीब दो हजार वर्षों में महावीर के शिष्यों ने सिर्फ अनेकान्त-दृष्टि विषयक इतना बड़ा ग्रन्थ समूह बना डाला है कि उसका एक खासा पुस्तकालय बन सकता है। पूर्व-पश्चिम और दक्खिन-उत्तर हिन्दुस्तान के सब भागों में सब समयों में उत्पन्न होनेवाले अनेक छोटे-बड़े और प्रचण्ड आचार्यों ने अनेक भाषाओं में केवल अनेकांत-दृष्टि और उसमें से फलित होने वाले वादों पर दण्डकारण्य से भी कहीं विस्तृत, सूक्ष्म और जटिल चर्चा की है। शुरू में जो साहित्य अनेकान्त-दृष्टि के अवलम्बन से निर्मित हुआ था उसके स्थान पर पिछला साहित्य खास कर तार्किक साहित्य—मुख्यतया अनेकान्त-दृष्टि के निरूपण तथा उसके ऊपर अन्य वादियों के द्वारा किये गए आक्षेपों के निराकरण करने के लिए रचा गया। इस तरह संप्रदाय की रक्षा और प्रचार की भावना में से जो केवल अनेकान्त विषयक साहित्य का विकास हुआ है उसका वर्णन करने के लिए एक खासी जुदी पुस्तिका की जरूरत है। तथापि इतना तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ निर्देश कर देना ही चाहिए कि समन्तभद्र और सिद्धसेन, हरिभद्र और अकलङ्क, विद्यानन्द और प्रभाचन्द्र, अभयदेव और वादिदेवसूरि तथा हेमचन्द्र और यशोविजयजी जैसे प्रकाण्ड विचारकों ने जो अनेकान्त-दृष्टि के बारे में लिखा है वह भारतीय दर्शन-साहित्य में बड़ा महत्त्व रखता है और विचारकों को उनके ग्रन्थों में से मनन करने योग्य बहुत कुछ सामग्री मिल सकती है।

फलितवाद—

अनेकान्त-दृष्टि तो एक मूल है, उसके ऊपर से और उसके आश्रय पर—विविध वादों तथा चर्चाओं का शाखा-प्रशाखाओं की तरह बहुत बड़ा विस्तार हुआ है। उसमें से मुख्य दो वाद यहाँ उल्लिखित किये जाने योग्य हैं—एक नयवाद और दूसरा सप्तभंगीवाद। अनेकान्त-दृष्टि का आविर्भाव आध्यात्मिक साधना और दार्शनिक प्रदेश में हुआ इसलिए उसका उपयोग भी पहले-पहल वहीं होना अनिवार्य था। भगवान् के इर्दगिर्द और उनके अनुयायी आचार्यों के समीप जो-जो विचार-धाराएँ चल रही थीं उनका समन्वय करना अनेकान्त-दृष्टि के लिए आवश्यक था। इसी प्रास कार्य में से 'नयवाद' की सृष्टि हुई। यद्यपि किसी-किसी नय के पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती उदाहरणों में भारतीय दर्शन के विकास के अनुसार विकास होता गया है। तथापि दर्शन प्रदेश में से उत्पन्न होनेवाले नयवाद की उदाहरणमाला भी आज तक दार्शनिक ही रही है। प्रत्येक नय की व्याख्या और चर्चा का विकास हुआ है पर उसकी उदाहरणमाला तो दार्शनिक-क्षेत्र के बाहर से आई ही नहीं। यही एक बात समझाने के लिए पर्याप्त है कि सब क्षेत्रों को व्याप्त करने की ताकत रखनेवाले अनेकान्त का प्रथम आविर्भाव किस क्षेत्र में हुआ और हजारों वर्षों के बाद तक भी उसकी चर्चा किस क्षेत्र तक परिमित रही?

भारतीय दर्शनों में जैन-दर्शन के अतिरिक्त, उस समय जो दर्शन अति प्रसिद्ध थे और पीछे से जो अति प्रसिद्ध हुए उनमें वैशेषिक, न्याय, सांख्य, औपनिषद—वेदान्त, बौद्ध और शाब्दिक—ये ही दर्शन मुख्य हैं। इन प्रसिद्ध दर्शनों को पूर्ण सत्य मानने में वस्तुतः तात्त्विक और व्यावहारिक दोनों आपत्तियाँ थीं और उन्हें बिलकुल असत्य कह देने में सत्य का घात था इसलिए उनके बीच में रहकर उन्हीं में से सत्य के गवेषण का मार्ग सरल रूप में लोगों के सामने प्रदर्शित करना था। यही कारण है कि हम उपलब्ध समग्र जैन-वाङ्मय में नयवाद के भेद-प्रभेद और उनके उदाहरण तक उक्त दर्शनों के रूप में तथा उनकी विकसित शाखाओं के रूप में ही पाते हैं। विचार की जितनी पद्धतियाँ उस समय मौजूद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थीं, उनके समन्वय करने का आदेश—अनेकान्त-दृष्टि ने किया और उसमें से नयवाद फलित हुआ जिससे कि दार्शनिक मारा-मारी कम हो; पर दूसरी तरफ एक-एक वाक्य पर अधैर्य और नासमझी के कारण पण्डित-गण लड़ा करते थे। एक पण्डित यदि किसी चीज को नित्य कहता तो दूसरा सामने खड़ा होकर यह कहता कि वह तो अनित्य है, नित्य नहीं। इसी तरह फिर पहला पण्डित दूसरे के विरुद्ध बोल उठता था। सिर्फ नित्यत्व के विषय में ही नहीं किन्तु प्रत्येक अंश में यह झगड़ा जहाँ-तहाँ होता ही रहता था। यह स्थिति देखकर अनेकान्त-दृष्टि वाले तत्कालीन आचार्यों ने उस झगड़े का अन्त अनेकान्त-दृष्टि के द्वारा करना चाहा और उस प्रयत्न के परिणाम स्वरूप 'सप्तभङ्गीवाद' फलित हुआ। अनेकान्त-दृष्टि के प्रथम फलस्वरूप नयवाद में तो दर्शनों को स्थान मिला है और उसी के दूसरे फलस्वरूप सप्तभङ्गीवाद में किसी एक ही वस्तु के विषय में प्रचलित विरोधी कथनों को या विचारों को स्थान मिला है। पहले वाद में समूचे सब दर्शन संगृहीत हैं और दूसरे में दर्शन के विशकलित मन्तव्यों का समन्वय है। प्रत्येक फलितवाद की सूक्ष्म चर्चा और उसके इतिहास के लिए यहाँ स्थान नहीं है और न उतना अवकाश ही है तथापि इतना कह देना जरूरी है कि अनेकान्त-दृष्टि ही महावीर की मूल दृष्टि और स्वतन्त्र दृष्टि है। नयवाद तथा सप्तभङ्गीवाद आदि तो उस दृष्टि के ऐतिहासिक परिस्थिति-अनुसारी प्रासंगिक फल मात्र हैं। अतएव नय तथा सप्तभङ्गी आदि वादों का स्वरूप तथा उनके उदाहरण बदले भी जा सकते हैं, पर अनेकान्त-दृष्टि का स्वरूप तो एक ही प्रकार का रह सकता है—भले ही उसके उदाहरण बदल जाएँ।

अनेकान्त-दृष्टि का असर—

जब दूसरे विद्वानों ने अनेकान्त-दृष्टि को तत्त्वरूप में ग्रहण करने की जगह सांप्रदायिकवाद रूप में ग्रहण किया तब उसके ऊपर चारों ओर से आक्षेपों के प्रहार होने लगे। बादरायण जैसे सूत्रकारों ने उसके खण्डन के लिए सूत्र रच डाले और उन सूत्रों के भाष्यकारों ने उसी विषय में अपने भाष्यों की रचनाएँ कीं। वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति और शांतरक्षित जैसे बड़े-बड़े प्रभावशाली बौद्ध विद्वानों ने भी अनेकान्तवाद की पूरी खबर ली। इधर से जैन विचारक विद्वानों ने भी उनका सामना किया। इस प्रचण्ड संघर्ष का अनिवार्य परिणाम यह आया कि एक ओर से अनेकान्त-दृष्टि का तर्कबद्ध विकास हुआ और दूसरी ओर से उसका प्रभाव दूसरे विरोधी सांप्रदायिक विद्वानों पर भी पड़ा। दक्षिण हिन्दुस्तान में प्रचण्ड दिगम्बराचार्यों और प्रकाण्ड मीमांसक तथा वेदान्त के विद्वानों के बीच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रार्थ की कुश्ती हुई उससे अन्त में अनेकान्त-दृष्टि का ही असर अधिक फैला। यहाँ तक कि रामानुज जैसे बिलकुल जैनत्व विरोधी प्रखर आचार्य ने शंकराचार्य के मायावाद के विरुद्ध अपना मत स्थापित करते समय आश्रय तो सामान्य उपनिषदों का लिया पर उनमें से विशिष्टाद्वैत का निरूपण करते समय अनेकान्त-दृष्टि का उपयोग किया, अथवा यों कहिए कि रामानुज ने अपने ढंग से अनेकान्त-दृष्टि को विशिष्टाद्वैत की घटना में परिणत किया और औपनिषद तत्त्व का जामा पहना कर अनेकांत-दृष्टि में से विशिष्टाद्वैतवाद खड़ा करके अनेकान्त-दृष्टि की ओर आकर्षित जनता को वेदान्त मार्ग पर स्थिर रखा। पुष्टि-मार्ग के पुरस्कर्ता वल्लभ जो दक्षिण हिन्दुस्तान में हुए, उनके शुद्धाद्वैत-विषयक सब तत्त्व, हैं तो औपनिषदिक पर उनकी सारी विचारसरणी अनेकान्त-दृष्टि का नया वेदान्तीय स्वाँग है। इधर उत्तर और पश्चिम हिन्दुस्तान में जो दूसरे विद्वानों के साथ श्वेताम्बरीय महान् विद्वानों का खण्डनमण्डन-विषयक द्वन्द्व हुआ उसके फलस्वरूप अनेकान्त-वाद का असर जनता में फैला और सांप्रदायिक ढंग से अनेकांतवाद का विरोध करनेवाले भी जानते अनजानते अनेकांत-दृष्टि को अपनाने लगे। इस तरह वाद रूप में अनेकांत-दृष्टि आज तक जैनों की ही बनी हुई है तथापि उसका असर किसी न किसी रूप में अहिंसा की तरह विकृत या अर्धविकृत रूप में हिन्दुस्तान के हरएक भाग में फैला हुआ है। इसका सबूत सब भागों के साहित्य में से मिल सकता है।

व्यवहार में अनेकान्त का उपयोग न होने का नतीजा—

जिस समय राजकीय उलट फेर का अनिष्ट परिणाम स्थायी रूप से ध्यान में आया न था, सामाजिक बुराइयाँ आज की तरह असह्य रूप में खटकती न थीं, उद्योग और खेती की स्थिति आज के जैसी अस्तव्यस्त हुई न थी, समझ-पूर्वक या बिना समझे लोग एक तरह से अपनी स्थिति में संतुष्टप्राय थे और असंतोष का दावानल आज की तरह व्याप्त न था, उस समय आध्यात्मिक साधना में से आविर्भूत अनेकान्त-दृष्टि केवल दार्शनिक प्रदेश में रही और सिर्फ चर्चा तथा वादविवाद का विषय बनकर जीवन से अलग रहकर भी उसने अपना अस्तित्व कायम रखा, कुछ प्रतिष्ठा भी पाई, यह सब उस समय के योग्य था। परन्तु आज स्थिति बिलकुल बदल गई है; दुनिया के किसी भी धर्म का तत्त्व कैसा ही गंभीर क्यों न हो, पर अब वह यदि उस धर्म की संस्थाओं तक या उसके पण्डितों तथा धर्मगुरुओं के प्रवचनों तक ही परिमित रहेगा तो इस वैज्ञानिक प्रभाव वाले जगत में उसकी कदर पुरानी कब्र से अधिक नहीं होगी। अनेकान्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टि और आधारभूत अहिंसा—ये दोनों तत्त्व महान् से महान् हैं, उनका प्रभाव तथा प्रतिष्ठा जमाने में जैन सम्प्रदाय का बड़ा भारी हिस्सा भी है पर इस बीसवीं सदी के विषम राष्ट्रीय तथा सामाजिक जीवन में उन तत्त्वों से यदि कोई खास फायदा न पहुँचे तो मंदिर, मठ और उपाश्रयों में हजारों पण्डितों के द्वारा चिल्लाहट मचाए जाने पर भी उन्हें कोई पूछेगा नहीं, यह निःसंशय बात है। जैनलिंगधारी सैकड़ों धर्मगुरु और सैकड़ों पंडित अनेकान्त के बाल की खाल दिन-रात निकालते रहते हैं और अहिंसा की सूक्ष्म चर्चा में खून सुखाते तथा सिर तक फोड़ा करते हैं, तथापि लोग अपनी स्थिति के समाधान के लिए उनके पास नहीं फटकते। कोई जवान उनके पास पहुँच भी जाता है तो वह तुरन्त उनसे पूछ बैठता है कि "आपके पास जब समाधानकारी अनेकान्त-दृष्टि और अहिंसा तत्त्व मौजूद हैं तब आप लोग आपस में ही गैरों की तरह बात-बात में क्यों टकराते हैं? मंदिर के लिए, तीर्थ के लिए, धार्मिक प्रथाओं के लिए, सामाजिक रीति रिवाजों के लिए—यहाँ तक कि वेश रखना तो कैसा रखना, हाथ में क्या पकड़ना, कैसे पकड़ना इत्यादि बालसुलभ बातों के लिए—आप लोग क्यों आपस में लड़ते हैं? क्या आपका अनेकान्तवाद ऐसे विषयों में कोई मार्ग निकाल नहीं सकता? क्या आपके अनेकान्तवाद में और अहिंसा तत्त्व में प्रिवीकाउन्सिल, हाईकोर्ट अथवा मामूली अदालत जितनी भी समाधानकारक शक्ति नहीं है? क्या हमारी राजकीय तथा सामाजिक उलझनों को सुलझाने का सामर्थ्य आपके इन दोनों तत्त्वों में नहीं है? यदि इन सब प्रश्नों का 'अच्छा समाधानकारक उत्तर आप असली तौर से 'हाँ' में नहीं दे सकते तो आपके पास आकर हम क्या करेंगे? हमारे जीवन में तो पद-पद पर अनेक कठिनाइयाँ आती रहती हैं। उन्हें हल किये बिना यदि हम हाथ में पोथियाँ लेकर कथंचित् एकानेक, कथंचित् भेदाभेद और कथंचित् नित्यानित्य के खाली नारे लगाया करें तो इससे हमें क्या लाभ पहुँचेगा? अथवा हमारे व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक जीवन में क्या फर्क पड़ेगा?" और यह सब पूछना है भी ठीक, जिसका उत्तर देना उनके लिए असंभव हो जाता है।

इसमें संदेह नहीं कि अहिंसा और अनेकान्त की चर्चावाली पोथियों की, उन पोथीवाले भण्डारों की, उनके रचनेवालों के नामों की तथा उनके रचने के स्थानों की इतनी अधिक पूजा होती है कि उसमें सिर्फ फूलों का ही नहीं किन्तु सोने-चाँदी तथा जवाहरात तक का ढेर लग जाता है तो भी उस पूजा के करने तथा करानेवालों का जीवन दूसरों जैसा प्रायः पामर ही नजर आता है और दूसरी तरफ हम देखते हैं तो यह स्पष्ट नजर आता है कि गांधीजी के अहिंसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्त्व की ओर सारी दुनिया देख रही है और उनके समन्वयशील व्यवहार के कायल उनके प्रतिपक्षी तक हो रहे हैं। महावीर की अहिंसा और अनेकान्त दृष्टि की डौंडी पीटनेवालों की ओर कोई धीमान् आँख उठाकर देखता तक नहीं और गांधीजी की तरफ सारा विचारक-वर्ग ध्यान दे रहा है। इस अन्तर का कारण क्या है? इस सवाल के उत्तर में सब कुछ आ जाता है

अब कैसा उपयोग होना चाहिए?

अनेकान्त-दृष्टि यदि आध्यात्मिक मार्ग में सफल हो सकती है और अहिंसा का सिद्धान्त यदि आध्यात्मिक कल्याण साधक हो सकता है तो यह भी मानना चाहिए कि ये दोनों तत्त्व व्यावहारिक जीवन का श्रेय अवश्य कर सकते हैं; क्योंकि जीवन व्यावहारिक हो या आध्यात्मिक—पर उसकी शुद्धि के स्वरूप में भिन्नता हो ही नहीं सकती और हम यह मानते हैं कि जीवन की शुद्धि अनेकान्त दृष्टि और अहिंसा के सिवाय अन्य प्रकार से हो ही नहीं सकती इसलिए हमें जीवन व्यावहारिक या आध्यात्मिक कैसा ही पसंद क्यों न हो पर यदि उसे उन्नत बनाना इष्ट है तो उस जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनेकान्त दृष्टि को तथा अहिंसा तत्त्व को प्रज्ञापूर्वक लागू करना ही चाहिए। जो लोग व्यावहारिक जीवन में इन दो तत्त्वों का प्रयोग करना शक्य नहीं समझते उन्हें सिर्फ आध्यात्मिक कहलानेवाले जीवन को धारण करना चाहिए। इस दलील के फलस्वरूप अन्तिम प्रश्न यही होता है कि तब इस समय इन दोनों तत्त्वों का उपयोग व्यावहारिक जीवन में कैसे किया जाए? इस प्रश्न का उत्तर देना ही अनेकान्तवाद की मर्यादा है।

जैन समाज के व्यावहारिक जीवन की कुछ समस्याएँ ये हैं—

१—समग्र विश्व के साथ जैन धर्म का असली मेल कितना और किस प्रकार का हो सकता है?

२—राष्ट्रीय आपत्ति और संपत्ति के समय जैन धर्म कैसा व्यवहार रखने की इजाजत देता है?

३—सामाजिक और साम्प्रदायिक भेदों तथा फूटों को मिटाने की कितनी शक्ति जैन धर्म में है?

यदि इन समस्याओं को हल करने के लिए अनेकान्त दृष्टि तथा अहिंसा का उपयोग हो सकता है तो वही उपयोग इन दोनों तत्त्वों की प्राणपूजा है और यदि ऐसा उपयोग न किया जा सके तो इन दोनों की पूजा सिर्फ पाषाणपूजा या शब्द पूजा मात्र होगी। परंतु मैंने जहाँ तक गहरा विचार किया है उससे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह स्पष्ट जान पड़ता है कि उक्त तीनों का ही नहीं किन्तु दूसरी भी वैसी सब समस्याओं का व्यावहारिक समाधान, यदि प्रज्ञा है तो अनेकान्त दृष्टि के द्वारा तथा अहिंसा के सिद्धान्त के द्वारा पूरे तौर से किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर जैनधर्म प्रवृत्ति मार्ग है या निवृत्ति मार्ग? इस प्रश्न का उत्तर, अनेकान्त-दृष्टि की योजना करके, यों, दिया जा सकता है—"जैनधर्म प्रवृत्ति और निवृत्ति उभय मार्गावलम्बी है। प्रत्येक क्षेत्र में जहाँ सेवा का प्रसंग हो वहाँ अर्पण की प्रवृत्ति का आदेश करने के कारण जैन-धर्म प्रवृत्तिगामी है और जहाँ भोग-वृत्ति का प्रसंग हो वहाँ निवृत्ति का आदेश करने के कारण निवृत्तगामी भी है।" परन्तु जैसा आजकल देखा जाता है, भोग में—अर्थात् दूसरों से सुविधा ग्रहण करने में—प्रवृत्ति करना और योग में—अर्थात् दूसरों को अपनी सुविधा देने में—निवृत्ति धारण करना, यह अनेकान्त तथा अहिंसा का विकृत रूप अथवा उनका स्पष्ट भंग है। श्वेताम्बरीय-दिगम्बरीय झगड़ों में से कुछ को लेकर उन पर भी अनेकान्त-दृष्टि लागू करनी चाहिए। नग्नत्व और वस्त्रधारित्व के विषय में द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक—इन दो नयों का समन्वय बराबर हो सकता है। जैनत्व अर्थात् वीतरागत्व यह तो द्रव्य (सामान्य) है और नग्नत्व तथा वस्त्रधारित्व, एवं नग्नत्व तथा वस्त्रधारण के विविधस्वरूप—ये सब पर्याय (विशेष) हैं। उक्त द्रव्य शाश्वत है पर उसके उक्त पर्याय सभी अशाश्वत तथा अव्यापक हैं। प्रत्येक पर्याय यदि द्रव्यसम्बद्ध है—द्रव्य का बाधक नहीं है—तो वह सत्य है अन्यथा सभी असत्य हैं। इसी तरह जीवनशुद्धि यह द्रव्य है और स्त्रीत्व या पुरुषत्व दोनों पर्याय हैं। यही बात तीर्थ के और मन्दिर के हकों के विषय में घटानी चाहिए। न्यात, जात और फिर्कों के बारे में भेदाभेद भङ्गी का उपयोग करके ही झगड़ा निपटाना चाहिए। उत्कर्ष के सभी प्रसंगों में अभिन्न अर्थात् एक हो जाना और अपकर्ष के प्रसंगों में भिन्न रहना अर्थात् दलबन्दी न करना। इसी प्रकार वृद्धलग्न, अनेकपत्नीग्रहण, पुनर्विवाह जैसे विवादास्पद विषयों के लिए भी कथंचित् विधेय-अविधेय की भंगी प्रयुक्त किये बिना समाज समंजस रूप से जीवित रह नहीं सकता।

चाहे जिस प्रकार से विचार किया जाए पर आजकल की परिस्थिति में तो यह सुनिश्चित है कि जैसे सिद्धसेन, समंतभद्र आदि पूर्वाचार्यों ने अपने समय के विवादास्पद पक्ष-प्रतिपक्षों पर अनेकान्त का और तज्जनित नय आदि वादों का प्रयोग किया है वैसे ही हमें भी उपस्थित प्रश्नों पर उनका प्रयोग करना ही चाहिए। यदि हम ऐसा करने को तैयार नहीं हैं तो उत्कर्ष की अभिलाषा रखने का भी हमें कोई अधिकार नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्त की मर्यादा इतनी विस्तृत और व्यापक है कि उसमें से सब विषयों पर प्रकाश डाला जा सकता है। इसलिए कोई ऐसा भय न रखें कि प्रस्तुत व्यावहारिक विषयों पर पूर्वाचार्यों ने तो चर्चा नहीं की, फिर यहाँ क्यों की गई? क्या यह कोई उचित समझेगा कि एक तरफ से समाज में अविभक्तता की शक्ति की जरूरत होने पर भी वह छोटी-छोटी जातियों अथवा उपजातियों में विभक्त होकर बरबाद होता रहे, दूसरी तरफ से विद्या और उपयोग की जीवनप्रद संस्थाओं में बल लगाने के बजाय धन, बुद्धि और समय की सारी शक्ति को समाज तीर्थों के झगड़ों में खर्च करता रहे और तीसरी तरफ जिस विधवा में संयम पालन का सामर्थ्य नहीं है उस पर संयम का बोझ समाज बलपूर्वक लादता रहे तथा जिसमें विद्याग्रहण एवं संयमपालन की शक्ति है उस विधवा को उसके लिए पूर्ण मौका देने का कोई प्रबंध न करके उससे समाज कल्याण की अभिलाषा रखें और हम पण्डितगण सन्मतितर्क तथा आप्तमीमांसा के अनेकान्त और नयवाद विषयक शास्त्रार्थों पर दिन रात सिरपच्ची किया करें? जिसमें व्यवहार बुद्धि होगी और प्रज्ञा की जागृति होगी वह तो यही कहेगा कि अनेकान्त की मर्यादा में से जैसे कभी आप्तमीमांसा का जन्म और सन्मतितर्क का आविर्भाव हुआ था वैसे ही उस मर्यादा में से आजकल 'समाज मीमांसा' और 'समाज तर्क' का जन्म होना चाहिए तथा उसके द्वारा अनेकांत के इतिहास का उपयोगी पृष्ठ लिखा जाना चाहिए।

ई० १९३०] ['अनेकान्त'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org